प्रवचन नं. २४ गाथा-६ ता. ३-७-७८ सोमवार जेठ वदि-१३ सं.२५०४

अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। भावार्थ (में) है ? क्या कहते हैं कि जो यह आत्मा है न आत्मा, वस्तु वह तो शुद्ध चैतन्य आनंदघन है अतीन्द्रियआनंद और अतीन्द्रियज्ञान की मूर्ति है। उसकी पर्याय में अवस्था में (हालत) वर्तमानदशा में अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। यह अशुद्धता अर्थात पर्याय का भेद परद्रव्य के संयोग से स्वयं अपनी योग्यता से होती है। आहाहा ! अशुद्धता, भेद अथवा पुण्य-पाप का भाव अपनी वस्तु जो द्रव्य है, उसमें तो है ही नहीं, परंतु उसकी पर्याय में मलिनता परद्रव्य के संयोग से आती है। `**उसमें मूलद्रव्य तो अन्यद्रव्यरूप नहीं होता**' क्या कहते हैं, वस्तु जो सच्चिदानंद ज्ञानानंद ध्रुव वस्तु, आत्मा नित्य ध्रुववस्तु यह कभी पुण्य-पाप के मैल, वह अन्य द्रव्यरूप यह स्वद्रव्य होता नहीं। समझ में आया ? सूक्ष्मबात बापू ! धर्म, धर्म यह क्या वस्तु है बहुत सूक्ष्म है। आहाहा !

यह मूलद्रव्य जो वस्तु है, वस्तु आत्मा, ज्ञानस्वरूप ज्ञायकभाव वह अन्य द्रव्य अर्थात पुण्य-पाप के भेदरूप तो कभी होता नहीं। समझ में आया ? **मात्र परद्रव्य के निमित्त से अवस्था मलिन हो जाती है।** पर कर्म का निमित्त उसके संबंध से आत्मा की अवस्था में पर्याय में, हालत में मलिनता होती है, वस्तु में मलिनता नहीं, वस्तु तो त्रिकाल निर्मलानंद है। आहाहा !

`**द्रव्यदृष्टि से द्रव्य तो जो है वह ही है**' वस्तु जो है वस्तु सच्चिदानंद प्रभु शुद्ध अखण्ड आत्मद्रव्य यह तो जो है वह ही है, उसमें कुछ फेरफार होता नहीं। पर्याय में फेरफार (होता है) यह संयोग जनित मलिन अवस्था वह वस्तु में नहीं। आहाहा ! दशा में, पर्याय में भेद है, वस्तु में नहीं। वस्तु और पर्याय (वस्तु में मलिनता नहीं तब मलिनता किधर से आई) मलिनता पर्याय में है वस्तु में मलिनता कैसी ? वस्तु तो है वही है। आहाहा ! पर्याय में अवस्था में मलिनता है अतः मलिनता चली जाती है... वस्तु में मलिनता हो तो वस्तु चली जायेगी, यदि वह अशुद्ध हो जाये एवं अशुद्धता का नाश करने जाये तब यह वस्तु नाश हो जाये, धर्म सूक्ष्मबात है भाई ! आहाहा !

द्रव्यदृष्टि से, द्रव्य अर्थात त्रिकालीवस्तु की दृष्टि से देखो तो द्रव्य जो है वही है। जो तत्त्व है वह - ऐसा का - ऐसा अनादि अनंत - ऐसा (ही) है। आहाहा ! और पर्याय दृष्टि से देखो तो मलिन ही दिखाई देता है, वर्तमान उसकी दशा, उसकी हालत, पर्याय, उससे देखो तो मलिन है, पर्यायदृष्टि से देखो तो मलिन है, द्रव्यदृष्टि

से देखो तो निर्मल है। आहाहा ! अब इसे - ऐसा समझना (कठिन पड़ता है)। मार्ग अनादि (से) ख्याल में नहीं (है) और जन्ममरण कर रहा है, चौरासी के अवतार (में)। आहाहा !

यह पर्यायदृष्टि से देखो तो मलिन दिखता है, इसीप्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञायकभाव मात्र है, ज्ञायक तो जानना, जानना, जानना, जानना - ऐसा ज्ञायक स्वभाव ही त्रिकाली उसका भाव है। उसकी अवस्था पुद्गलकर्म के निमित्त से रागादिकरूप मलिन है। उसकी वर्तमानदशा, त्रिकाली द्रव्य को छोड़कर वर्तमान अवस्था में पुद्गलकर्म के निमित्त से रागद्वेषादि मलिनता है, वह पर्याय है, यह तो अवस्था है। आहाहा ! मनुष्यपना मनुष्यपने की अपेक्षा कायम है। बाल, युवान, वृद्धावस्था यह तो पर्याय के भेद हैं। मनुष्यत्व तो मनुष्यत्वरूप कायम है। इसीप्रकार सोना तो स्वर्णत्वरूप कायम है, परंतु सोना की अवस्था जो कुण्डल कड़ा आदि होती है यह अवस्था है, यह अवस्था भेद है यह वस्तु में नहीं। आहाहाहा ! अब - ऐसा समझना।

`**द्रव्यदृष्टि से देखा जाय तो ज्ञायकत्व तो ज्ञायकत्व ही है,**' वस्तु, वस्तु, वस्तु त्रिकाली वस्तु द्रव्यतत्त्व इस दृष्टि देखा जाय तो **ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। वह कहीं जड़त्व नहीं हुआ।** ज्ञायक भाव जो जानन स्वभाव वह तो ज्ञायक स्वभाव रूप तो त्रिकाल है। यह पुण्य-पाप भाव जो जड़ है, उसरूप यह हुआ नहीं। पुण्य और पाप दया-दान-व्रत-भक्ति, काम, क्रोध का भाव उसमें ज्ञायक भाव का अंश नहीं, वह ज्ञायकभाव तो नहीं परंतु ज्ञायक भाव की किरण अंश (रूप) पर्याय, (अर्थात) उसकी निर्मल पर्याय भी पुण्य-पाप के भाव में नहीं। शुभ-अशुभ भाव जो है (वह) मलिन है जड़ है, आहाहा ! ***शरीर जड़ है यह तो रंग, गंध, स्पर्श, रसवाला जड़ है। आहाहा ! और पुण्य-पाप का भाव जड़ है उसमें चैतन्य के प्रकाश का अभाव है इस अपेक्षा यह जड़ है। आहाहा !***

`**यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है**' इस गाथा में तो वस्तु की दृष्टि बताना, वस्तु की दृष्टि कराना, तब यह सम्यग्दर्शन होता है। सत्य दर्शन होता है। जैसी वस्तु है ऐसी दृष्टि कराने को, द्रव्यदृष्टि को प्रधान मुख्य कहकर कहा है। है ?

`**जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं,** चौदह गुणस्थान यह भेद है, यह भेद है **वह परद्रव्य की संयोग जनित पर्याय है**' शुभाशुभ भाव, पर्याय में कर्म के संयोग के निमित्त से, अपनी उपाद की योग्यता से उत्पन्न होता है, परंतु यह तो जड़। इस कारण प्रमत्त-अप्रमत्त का भेद है वह परद्रव्य की संयोज जनित पर्याय है। जैसे शुभाशुभभाव परद्रव्य के संयोग जनित विकारी पर्याय जड़ पर्याय है, ऐसे प्रमत्त-अप्रमत्त का भेद

भी पहले गुणस्थान से छठवें (तक) प्रमाद सातवें से चौदहवें अप्रमाद यह भेद है, यह संयोगजनित की अपेक्षा यह भेद है, वस्तु में भेद नहीं, ऐसी चीज है।

हिन्दी बोलें परंतु भाव तो जो है वही रहे, अभी तो (यह बात) चलता नहीं, अभी तो सभी गड़बड़-गड़बड़ (चलती है), दया करो और व्रत करो एवं भक्ति करो तथा पूजा करो धर्म होगा, हो जायेगा। धूल में धर्म नहीं भाई तुझे ख्याल नहीं। यह विकारी भाव पर्यायदृष्टि से संयोग जनित भेद है यह वस्तु में है नहीं और वस्तु की दृष्टि हुये बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है कि जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं यह तो परद्रव्य के संयोगजनित पर्याय है, यह अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है। वस्तु दृष्टि कराने को यह अशुद्धता गर्भित रखकर उसमें है नहीं, उसकी पर्याय में भी है नहीं - ऐसा गौण करके... पर्याय है ही नहीं - ऐसा नहीं परंतु उस पर्याय को गौण करके अर्थात उसकी मुख्यता लक्ष्य में न लेने को, त्रिकाली द्रव्य को मुख्यता से लक्ष्य में लेने को, इस कारण से सम्यग्दर्शन होता है धर्म की पहली सीढ़ी, इस कारण से अशुद्धता गौण करके है ? द्रव्यदृष्टि में यह गौण है, आहाहा ! वस्तु जो चैतन्यप्रभु नित्यानंद ध्रुव जो वस्तु है, उसकी दृष्टि में यह पर्याय के भेद गुणस्थान आदि पुण्य-पाप यह सब गौण है व्यवहार है त्रिकाली ज्ञायकभाव यह मुख्य है और प्रमत्त आदि का भेद है यह गौण है। त्रिकाली ज्ञायकभाव है यह निश्चय है और पर्याय का भेद है वह व्यवहार है। नेमचन्द्र भाई ! - ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा !

इसने परवाह नहीं कि किसी दिन, संसार के पाप सारे दिन करे, उसमें कहीं धर्म सुनने जाय एकाद घण्टे तो ऐसी उपदेश मिले कि दया करो और व्रत करो और भक्ति करो एवं पूजा करो, तो तुमको धर्म हो जायेगा। यह तो वह का वही मिथ्यात्व है।

यहाँ तो अशुद्धता वस्तु जो त्रिकाली है, जो कायमी असली चीज है उसकी दृष्टि कराने को, द्रव्यदृष्टि की मुख्यता से, जो पर्याय है वह गौण है। त्रिकाल यह सत्यार्थ है और पर्याय इस अपेक्षा अभूतार्थ। आहाहा ! त्रिकाली सत्यार्थ है, तब इस अपेक्षा पर्याय असत्यार्थ है, त्रिकाली वास्तविक है तब यह भेद उपचार है। वस्तु ऐसी सूक्ष्म है बापू ! आहाहा ! यहां तक कल आया था, आया था यहाँ तक ? यह तो फिर से (लेते है) भाई के कारण। आहाहा ! आहाहा ! **द्रव्यदृष्टि शुद्ध है... वस्तु जो त्रिकाली सच्चिदानंद प्रभु, ध्रुव जिसमें पलटाव, अवस्था भी नहीं, ऐसी चीज है यह शुद्ध है, पर्याय, मलिनता और भेद अशुद्ध कहकर गौण करके, व्यवहार कहकर उपचार कहकर के है ही नहीं - ऐसा कहने में आया है।** समझ में आया ? और

त्रिकाली भगवान आत्मा एक समय में ध्रुव, ध्रुव चिदानंद प्रभु वस्तु है उसकी दृष्टि से शुद्ध है। द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, क्योंकि त्रिकाली चीज है यह सत्यार्थ है भूतार्थ है, विद्यमानवस्तु है त्रिकाली, उसकी दृष्टि से यह शुद्ध है। संयोगजनित अशुद्धपर्याय की दृष्टि तो अशुद्ध है, पर्याय है और व्यवहार है। आहाहा ! समझ में आया ? आज हिन्दी चला, यह हिन्दी चला आज, नहीं समझते ? यह तो हिन्दी चलता है आज तो, समझ में आ रहा है, उसे कुछ फरक नहीं। समझ में आया ?

द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, वस्तु है वैसी दृष्टि करना यह द्रव्यदृष्टि यह शुद्ध है, पर्यायदृष्टि से... यह पर्याय तो अशुद्ध है संयोगजनित, उसको गौण करके व्यवहार कहकर और वस्तु को मुख्य करके निश्चय कहकर उसकी दृष्टि कराई है। पण्डितजी ! आहाहा ! दिगम्बर संतो की वाणी गंभीर बहुत अधिक गंभीर बापू, वस्तु ऐसी है और ऐसी वस्तु अन्य कहीं है नहीं, श्वेताम्बरों में, स्थानकवासियों में और अन्यमत में कहीं है नहीं। ऐसी चीज है आहाहा !

तो कहते हैं कि द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, त्रिकाली वस्तु की दृष्टि यह शुद्ध है और त्रिकाली दृष्टि यह निश्चय है। यह त्रिकाली द्रव्य जो है, वह निश्चय है, और उसकी दृष्टि वह निश्चय है। आहाहा ! भूतार्थ है, त्रिकालीवस्तु है यह भूत अर्थात विद्यमान पदार्थ है पर्याय तो पलटती क्षणिक अवस्था संयोग जनित भेद मलिनता है यह तो स्वभाविक वस्तु है त्रिकाली, जिसमें संयोग की अपेक्षा भी नहीं, संयोग के अभाव की अपेक्षा नहीं। आहाहा ! जितना समझ में आये उतना समझो बापू ! यह तो परमात्मा जिनेश्वर देव, तीर्थंकर त्रिलोकनाथ उनकी यह वाणी है। अभी तो सभी जगह गड़बड़ हो गई है, जहाँ देखो वहाँ यह करो और उपवास करो, व्रत करो, परंतु कहते हैं कि यह सभी विकल्प हैं और अशुद्ध है, आहाहा ! यह अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से उत्पन्न होती है, वह स्वाभाविक चीज नहीं। आहाहाहा !

स्वभाविक चीज तो त्रिकाली जो चीज है यह स्वाभाविक है, सहज है, उसकी दृष्टि (करना) ***द्रव्य शुद्ध है तो दृष्टि भी शुद्ध है और द्रव्य भी, आहाहा ! (वस्तु) अभेद है और पर्याय अभेद हो गई, द्रव्य निश्चय है तो पर्याय को भी निश्चय कहा जाता है,*** वस्तु भूतार्थ है, भूत अर्थात विद्यमान, उपस्थित, कायमी, त्रिकाली मौजूद चीज है पर्याय यह तो क्षणिक विकार कर्म के संयोग से उत्पन्न है। यह वस्तु है सत्य है भूतार्थ है, आहाहा ! सत्यार्थ है, सत्य, सत्य कायमी सत्य पदार्थ है। आहाहा ! आहाहा वह सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया ?

अभ्यास नहीं करें, कुछ खबर नहीं पड़े, जगत के पापरूप सभी अभ्यास, पूरे दिन धंधा... इस दुकान पर बैठकर ग्राहक को सम्भालना और माल बेचना... यदि

नोकरी हो तो दो-पांच हजार की तनख्वा मिले, अकेला पाप है सारे दिन। धर्म तो नहीं परंतु पुण्य भी नहीं। आहाहाहा !

यहाँ तो धर्म करने के लिये, पर्यायदृष्टि को, मलिनता और भेद को गौण करके त्रिकाली दृष्टि कराने को कि जो सत्य दृष्टि है, क्योंकि वस्तु सत्य है त्रिकाली मौजूद चीज है, विद्यमान चीज भगवान त्रिकाली ध्रुव, उसकी दृष्टि करना वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! उसका नाम धर्म की प्रथम सीढ़ी है। अभी चारित्र तो कहीं रह गया यह तो बहुत कठिन बात है, समझ में आया ?!

अभेद है भूतार्थ है, सत्यार्थ है, परमार्थ है। आहाहा ! परमपदार्थ परमार्थ यह वस्तु परमार्थ है यह दुनिया का परमार्थ हम करते हैं परोपकार करते है, यह सब झूठी बात है। किसी का कोई कुछ कर सकता नहीं। परमपदार्थ परमार्थ तो प्रभु स्वयं है। त्रिकाली परमपदार्थ परमार्थ उसकी दृष्टि करने से जन्म-मरण का अंत लानेवाला सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा ! समझ में आया ? इसलिये आत्मा ज्ञायक ही है। वस्तु है यह तो त्रिकाली ज्ञायक, ज्ञायक, ज्ञायक ज्ञानरूप ज्ञान स्वभाव, ज्ञायक `ज्ञ' स्वभाव सर्वज्ञ स्वभाव, ज्ञायकभाव, यह तो त्रिकाली ज्ञायकभाव स्वरूप है। आहाहा ! ऐसी भाषा और - ऐसा सभी...। बापू मार्ग सूक्ष्म बहुत भाई ! आहाहा ! है ? इस कारण आत्मा ज्ञायक ही है, एक ज्ञायक स्वरूप ज्ञायकत्व स्वभावमात्र यह तो है। ज्ञायकत्व स्वभाव कायमी त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, मात्र आत्मा है। ***उसमें कोई मलिनता और भेद है नहीं। आहाहा ! उमसें भेद नहीं। यह प्रमत्त-अप्रमत्त और पुण्य-पाप का भाव वह वस्तु के स्वरूप में नहीं, भेद नहीं।*** आहाहा ! इसलिये यह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं इस कारण वह प्रमत्त-अप्रमत्त जो गुणस्थान के भेद, जैसे चढ़ने को सीढ़ी होती है न ? सीढ़ी... इसी प्रकार भेद है गुणस्थान चौंदह पर्याय में, वो उसमें हैं ही नहीं। आहाहा !

`ज्ञायकभाव नाम भी उसे ज्ञेयों को जानने से दिया जाता है' आहा ! जाननेवाला जाननेवाला - ऐसा कहा जाता है, तो जाननेवाला पर को जानते है इसलिये जाननेवाला है ? कि `ना' आहाहा ! यह तो पर को जानने के काल में जो अपनी ज्ञान की विकास शक्ति प्रगट हुयी यह अपने से हुयी है, पर का जानना और स्व का जानना वह पर्याय में, पर्याय की विकास शक्ति व्यक्त प्रगट हुयी यह अपने से हुई है पर से नहीं। आहाहाहा !

ज्ञायक नाम भी उसे ज्ञेयों को जानने से दिया जाता है, `क्योंकि ज्ञेयों का प्रतिबिम्ब भी जब झलकता है,' ज्ञान की पर्याय में, पर्याय की बात अब चलती है, ***इसकी पर्याय में राग जानने में आता है, शरीर है - ऐसा जानने में आता है, ज्ञान की***

पर्याय में उसकी झलक अर्थात जानने में है। आहाहा ! ज्ञेयों का प्रतिबिम्ब जब झलकता है, ज्ञान की पर्याय में जो स्वपर प्रकाशक पर्याय की सामर्थ से कसित हुयी, उसमें राग और शरीर आदि देखने में जानने में आते है, 'तव ज्ञान में वैसा अनुभव होता है,' तो ज्ञान में - ऐसा अनुभव होता है कि मैं तो ज्ञान की पर्याय हूँ, तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं। क्या कहते हैं ?

त्रिकाली ज्ञायक भाव तो शुद्ध है परंतु उसका ज्ञान हुआ अब पर्याय में, तो ज्ञान उसको हुआ वह ज्ञान की पर्याय में स्व तो जानने में आया परंतु वह ज्ञान की पर्याय अवस्था में पर (भी) जानने में आया, तो पर जानने में आया तब इतनी परज्ञेयकृत पराधीनता उसमें आयी - ऐसा है नहीं। ***यह पर ज्ञेय कृत जो भाव कहने में आया यह तो स्वज्ञेय अपनी पर्याय का भाव है, यह ज्ञान पर्याय अपना पर्याय का भाव है यह ज्ञेय कृत से हुआ है - ऐसा है नहीं।*** अरे ऐसी बातें। भाषा तो साधारण है परंतु अब भाव तो जो हो उस प्रकार हो न ? आहाहा ! क्या कहा ? कि जो जाननेवाला - ऐसा कहने में आया, तब जाननेवाले (ने) अपने को तो जाना, परंतु वह पर को जानने के काल में, पर जैसी चीज है वैसा यहाँ ज्ञान होता है, तो - ऐसा कि पर के कारण पर्याय हुई है - ऐसा है नहीं, यह पर को जानने की पर्याय है, अपने से प्रगट हुई है, पर से नहीं। समझ में आया ? आहाहाहा !

ऐसा उपेदश है, परन्तु कुछ सुना (ही) न हो, द्रव्य क्या और पर्याय क्या, अभेद क्या और भेद क्या यह क्या है आहा ! यह अनादि काल से अज्ञान में रूलते रूलते परिभ्रमण (किया), आहाहा ! कौआ, कीड़ा, कुत्ता, क्षुद्रजीव उसमें भव अनंत किये और यहाँ भी नहीं समझें (तो) यह मरकर वहीं जायेगा आहाहा ! भले यहाँ करोड़पति हो, मांस और शराब खाता (पीता) न हो शराब आदि, परंतु ज्ञान नहीं वस्तु का और माया, कपट, लोभ आदि भाव किये हों आहाहा ! तब पशु में जायेगा, फिर मनुष्य का अवतार मिलना कठिन पड़ेगा, धर्म तो कठिन परंतु मनुष्यपना मिलना कठिन (हो जायेगा) आहाहा !

यह चीज जैसी है, ऐसी ज्ञान में समझ में न आये तब तक तो परिभ्रमण का भाव है। आहाहा ! ज्ञान में - ऐसा अनुभव आता है, जैसा राग और शरीर को जाना तब यह ज्ञान की पर्याय जानने में आई है, ***यह राग का ज्ञान हुआ इसलिये राग को जाना अथवा राग से ज्ञान हुआ - ऐसा है नहीं। यह ज्ञान पर्याय (ने) अपने को जाना उसी पर्याय में पर को जाना, तब पर के कारण से पर का जानना हुआ - ऐसा है नहीं, अपने में यह स्वपरप्रकाशक भान हुआ, विकास हुआ, प्रगट हुआ, यह राग से प्रगट हुआ नहीं, शरीर को जाना तो शरीर से जानने की पर्याय***

उत्पन्न हुई नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ?

फिर भी उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं, क्योंकि जैसा ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हुआ, जैसा शरीर और राग, जैसे अपनी पर्याय में स्वज्ञेय जानने में आया उस ही पर्याय में पर भी जानने में आये, यह (जो) प्रतिभासित हुआ वैसा (ही) ज्ञायक का अनुभव करनेपर ज्ञायक ही है, यह तो जानने की पर्याय ज्ञायक की ही है, यह राग की पर्याय नहीं, अरे ! ऐसी बातें अब ! श्लोक (गाथा) बहुत अच्छी है नेमचन्द्रभाई ! छठवीं गाथा, यह तो भावार्थ है, टीका तो चल चुकी यह तो उन्नीसवीं वार चलता है, अठारहबार तो सारा समयसार सभा में चल गया पहले से तो अंत तक अठारहबार, यह उन्नीसवीं बार चलता है। आहाहा ! वस्तु गहन ! कभी सुनी नहीं, विचार में आयी नहीं क्या चीज है और उसकी दशा में क्या होता है, पहले तो यह कहा कि वस्तु है यह तो त्रिकाली शुद्ध है और उसकी दृष्टि करना वह शुद्ध है, पर्याय में अशुद्धता आती है वह संयोग जनित है इसलिये मलिनता और भेद पड़ते हैं।

अब यहाँ जो पर्याय हुई यह दूसरी बात है, फिर भी वह पर्याय द्रव्य में नहीं, स्वज्ञेय को जाना और परज्ञेय को जाना यह पर्याय स्वपर प्रकाशक अपने से अपने में हुई है, फिर भी वह पर्याय द्रव्य में है नहीं, पर्याय यह भेद है। आहाहा !

इसमें मुंबईवालों को कहाँ फुरसत मिले इसमें - ऐसा समझने की ? व्यापार सारे दिन पाप। सुबह से उठे तभी से यह करो और यह करो, धंधा, धंधा, धंधा पाप का, आहाहा ! धर्म तो नहीं परंतु पुण्य भी नहीं होता। आहाहा ! और दो-चार घण्टे सत् सुनने में आता हो तब पुण्य भी बंधे परंतु धर्म नहीं। धर्म तो यह पुण्य बंध के राग से भिन्न भगवान है, पूर्णानंद का नाथ, ज्ञायकभाव है उसकी दृष्टि करना अर्थात कि उस दृष्टि में ज्ञायक लेना... आहाहा ! जिस दृष्टि में रागादि पर्याय आदि लिया है उस दृष्टि में सारा त्रिकाली ज्ञायक लेना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा !

'**क्योंकि जैसा ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हुआ**' पर्याय की बात है हो ! '**वैसे ज्ञायक का अनुभव करने पर ज्ञायक ही है,**' वैसे यह जानने की पर्याय ज्ञायक की ही है यूं, **स्व का जानना और पर का जानना यह पर्याय ज्ञायक की है। अथवा पर्याय में ज्ञायक ही जानने में आया है।** आहाहाहा ! पर जानने में आया है - ऐसा है ही नहीं। आहाहाहा ! अपना ज्ञायक चैतन्यप्रभु, नित्यानंद ध्रुव उसका जो सम्यक्ज्ञान स्वसन्मुख होकर आश्रय लेकर हुआ, इस ज्ञान की पर्याय में रागादिक, शरीरादिक या बाह्य चीज जानने में आती है तब कहते हैं कि पर के कारण से (ज्ञेयाकार) पर्याय जानने में आती है - ऐसा नहीं, यह पर्याय का स्वभाव इतना स्वपर प्रकाशक

प्रगट होकर अपने में अपनी पर्याय है - ऐसा जानते हैं - ऐसा है। नेमचन्द्रभाई ! मार्ग बहुत सूक्ष्म है भाई ! अभी सम्प्रदाय में तो विरोध उठा है, परंतु क्या करें ? यह विचार और खबर नहीं वहाँ। अरेरे ! आहा ! यह वस्तु जो अंदर रह जाती है पूरी सच्चिदानंद प्रभु, नित्यानंद सहजात्मस्वरूप, सहजस्वभावी जिसमें पलटना पर्याय, पर्याय ही नहीं। - ऐसा स्वभाव जो वस्तु है वह पर से दृष्टि उठाकर, अंदर त्रिकाली में दृष्टि लगाना... वह दृष्टि शुद्ध है और वस्तु शुद्ध है और वह दृष्टि शुद्ध हुई और स्व का ज्ञान हुआ ***उस ज्ञान की पर्याय में पर्याय का स्वपरप्रकाशक स्वभाव होने से पर जानने में आया, यह पर के कारण से ज्ञान पर का हुआ यहाँ - ऐसा नहीं। यह तो अपनी स्वपर प्रकाशक सामर्थ से पर को जानने का विकास हुआ है,*** ऐसी बात है। अरेरे ! जन्म-मरण का अंत कर दिया।

अभी तो ऐसा सुनते हैं कि युवान, युवान व्यक्तियों का हार्ट फैल, ऐसी बैठे बैठे बात करते करते और हार्ट फैल, बच्चों को भी हार्ट फैल। आहाहा ! कहाँ बिचारे मर के जाये आहा ! कहीं भटकना ढोर में पशु में अवतार... उनके बंगला और पैसा पड़ा रहे यहाँ। आहा ! प्रभु तुम्हें निकलने का काल है... यह निकलने का काल (पार उतरने का) यह चैतन्यद्रव्य है। आहाहा ! जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, स्वभावभाव, कायमीभाव, असलीभाव, नित्यभाव, आहाहा ! उसकी दृष्टि करने से अर्थात उसमें प्रवेश करने से तुम्हें सम्यग्दर्शन होगा यह सम्यग्दर्शन अनंत भव का अंत करनेवाला है, शेष कोई चीज दया, दान, व्रत, भक्ति आदि तो भव संसार (के कारण) है। आहाहाहा !

क्योंकि जैसा ज्ञेय (पर), ज्ञान में प्रतिभासित, प्रतिभासित अर्थात जैसा है वैसा यहाँ ज्ञान हुआ, वैसा ज्ञायक का अनुभव करना, यह तो ज्ञायक की पर्याय है और ज्ञायक से उत्पन्न हुई है, पर से... पर की नहीं, पर से नहीं। आहाहा ! यह जो मैं जाननेवाला हूँ सो मैं ही हूँ। इस ज्ञान की पर्याय में राग शरीर जानने में आया, परंतु जानने की पर्याय है यह तो मैं हूँ, हाँ ? मैं जाननेवाला हूँ सो मैं ही हूँ। यह जाननेवाले की पर्याय है यह मैं हूँ यह राग से जाननेवाले की पर्याय हुई है, राग का ज्ञान - ऐसा है नहीं। आहाहा ! कहाँ ले जाना है उसे ? - ऐसा मार्ग है। उसके (पता) ज्ञान बिना ८४ में भटक कर मरता है। कौआ और कुत्ता, सिंह और बाघ भेडिया का अवतार... यह बनिया मरकर बहुत लोग वहाँ जानेवाले हैं। धर्म की खबर नहीं पड़ती सच्चा सत्समागम दो-चार घण्टे चाहिए इतना समय नहीं मिले और पाप का असत्समागम... यह धंधा असत्समागम है और कुगुरु मिले तब उसका संग यह असत्समागम है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि पर जो जानने में आया वह तो मैं ही हूँ, यह तो मेरी पर्याय है, मेरे से उत्पन्न हुई है, ***राग का ज्ञान शरीर का ज्ञान वह ज्ञान राग और शरीर के कारण से नहीं हुआ है। मेरी पर्याय की सामर्थ से यह ज्ञान हुआ है। मैं त्रिकाली तो ज्ञायक हूँ परंतु उसकी जो पर्याय जो ज्ञायक को जाने और पर को जाने यह तो मेरी पर्याय है।*** मैं जाननेवाला उसरूप परिणमित हुआ हूँ। राग यह परिणाम है। राग का ज्ञान हुआ शरीर का ज्ञान (हुआ)। यह राग यहाँ आया है और राग के कारण से ज्ञान की पर्याय पर को जानने की हुई - ऐसा है नहीं। - ऐसा मार्ग है।

भाई ने हिन्दी का कहा था, तुम्हारे भाई ने कहा कि थोड़ा हिन्दी लो। फिर पूरा हिन्दी लो कहा, सुबह जल्दी आये थे। फिर कहा थोड़ा हिन्दी नहीं हो सकेगा, थोड़ा गुजराती थोड़ा हिन्दी गड़बड़ नहीं चले... कहा पूरा हिन्दी लो भाई के कारण। आहाहा ! बापू मार्ग भिन्न है भाई, आहाहा !

अरेरे सत्य सुनने में भी आये नहीं, तब यह सत्य क्या चीज है उसकी प्राप्ति तो महादुर्लभ है। आहाहा ! आहाहा !

`यह जो मैं जाननेवाला हूँ सो तो मैं ही हूँ` राग और शरीरादिक की क्रिया जो होती है जड़ की, उसका यहाँ ज्ञान होता है वह (ज्ञान) तो मैं ही हूँ, यह ज्ञान की पर्याय मेरी है मेरे से उत्पन्न हुई है, पर से उत्पन्न हुई नहीं। आहाहा ! **`अन्य कोई नहीं`** - ऐसा अपने को अपना अभेदरूप अनुभव हुआ, ऐसे अपने को ***भगवान स्वरूप चैतन्यप्रभु... अपना ज्ञान हुआ और पर के ज्ञान में भी अपना ज्ञान हुआ - ऐसा अपने को अपना अभेदरूप अनुभव हुआ, तब इस जाननेरूप क्रिया का कर्त्ता स्वयं ही है,*** क्या कहा ? जानन स्वरूप जो भगवान आत्मा त्रिकाल, उसकी जानने की पर्याय और उस समय अभी राग और शरीर को जानते है यह पर्याय, इस पर्याय का कर्त्ता तो आत्मा है, आहा ! है ? इस जाननेरूप क्रिया का कर्त्ता यहाँ लिया है, आहाहा ! पर्याय हुई न ? क्रिया है न ? पर्याय; त्रिकाली चैतन्यज्ञायक भी मैं हूँ - ऐसा लक्ष्य हुआ और ज्ञान में फिर भी शरीरादिक पर ऊपर लक्ष्य जाता है तो उसका भी ज्ञान होता है तब उसका ज्ञान हुआ वह ज्ञान की पर्याय मेरे ज्ञानकृत है... है ? यह जाननेरूप क्रिया का कर्त्ता स्वयं ही है। यह राग से ज्ञान हुआ तो राग कर्त्ता और जानने का कार्य उसका कर्म - ऐसा है नहीं। आहाहा ! - ऐसा वीतराग का मार्ग है।

`यह जाननेरूप क्रिया का कर्त्ता स्वयं ही है` स्व को जानना और पर का जानना यह जानने की क्रिया का कर्त्ता तो स्वयं आत्मा है। यह जानने की क्रिया, पर का

जानना हुआ तो पर कर्त्ता है और यह ज्ञान की पर्याय कार्य है - ऐसा है नहीं, और जिसने जाना वह कर्म भी स्वयं ही है। आहाहाहा ! यह कर्त्ता भी स्वयं है, अपनी ज्ञान की पर्याय का, और कर्म भी स्वयं ही है। कार्य हुआ वह भी स्वयं ही है अपना। आहाहा ! - ऐसा एक ज्ञायक स्वभाव स्वयं शुद्ध है। ऐसा एक ज्ञायक स्वभाव स्वयं शुद्ध है ? हिन्दी दी है न हिन्दी पुस्तक दी (है) हिन्दी है ? आहाहा ! यह तो त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वर देव की वाणी है। आहा ! प्रभु तुम कौन (हो), कैसे हो ? और कितना काल का है। मैं तो ज्ञायक हूँ कितने समय से हो ? मैं तो त्रिकाल हूँ, तो उसमें पर्याय का कोई भेद (उसमें) है कि नहीं ? उसको जो जाननेवाली पर्याय है अथवा अशुद्ध राग है, यह कोई उसमें है कि नहीं ? तो कहते है, नहीं ! तब उसमें है नहीं - ऐसा ज्ञान हुआ तब यह ज्ञान की पर्याय हुई, यह पर्याय तो स्व को जानती है और पर को जानती है यह पर्याय उसमें है ही नहीं अंदर में ? कि यह (पर्याय) अंदर में नहीं, परंतु पर्याय में दोनों का जानना, यह मेरे में है। पर्याय में स्व का जानना और पर का जानना यह पर्याय में है, समझ में आया ? क्या भाई आये नहीं ? प्रवीणभाई ! वहाँ बैठे हो ठीक।

मनीष गया, मनीष गया ? हाँ ? आहाहा !

अंदर चैतन्यज्ञान का पुंज है। जैसे गठान होती है अर्थात गठान क्या कहते हैं रुई की गठान रुई का बोरा बड़ा होता है न २५-२५ मन का, यह अनंत-अनंत ज्ञानादि गुण का बोरा है, उसमें से थोड़ा नमूना बाहर निकालते है कि देखो भाई यह रूई ऐसी है। ऐसे यह ज्ञायक पुञ्ज प्रभु उसका ज्ञान करने से, उसके नमूनेरूप ज्ञान की पर्याय बाहर आती है, कि यह ज्ञान की पर्याय जो आई - ऐसा ही सारा स्वरूप ज्ञानमय है। आहाहा ! ***और वह ज्ञान की पर्याय की जो अवस्था हुई, यह है तो भेद त्रिकाल की अपेक्षा, परंतु राग तरफ का झुकाव नहीं, राग का ज्ञान हुआ, यह तो स्व के झुकाव में हुआ उस कारण उस पर्याय को भी अभेद अर्थात स्वसन्मुख हुई स्व के आश्रय से हुई, तो अभेद हुई - ऐसा कहा जाता है। पर्याय कहीं द्रव्य में प्रवेश करती नहीं, पर्याय तो पर्याय में रहती है,*** भले ज्ञायक का ज्ञान हुआ और राग का ज्ञान हुआ वह तो अपनी पर्याय हुई है, परंतु वह पर्याय त्रिकाली में जाती नहीं, ***पर्याय पर्याय में रहती है द्रव्य-द्रव्य में रहता है। फिर भी द्रव्य का ज्ञान पर्याय में आता है यह पूर्णानंद प्रभु है - ऐसा ज्ञान पर्याय में आता है, परंतु यह वस्तु पर्याय में आती नहीं।*** आहाहाहा ! समझ में आया ? धीमे-धीमे कहा जाता है, यह तो प्रभु का मार्ग है, आहाहा ! जिनेश्वरदेव अनंत सर्वज्ञ अनंत तीर्थंकर यही बात कहते आये हैं, इसने अनंतबार सुनी है परंतु इसे रुचि (पसंद

आयी) नहीं इसे। इसने अंतर का आश्रय करके शरण लिया नहीं इसने आहाहा ! शरण लिया नहीं।

तो कहते हैं - ऐसा यह ज्ञायक मात्र स्वयं शुद्ध है, त्रिकाली, यह शुद्धनय का विषय है। यहाँ क्यों कहा ? कि यहाँ शुद्ध जो है त्रिकाली, परंतु उसका यहाँ ज्ञान हुआ उसको शुद्ध है, तब यह पर्याय (में) जो ज्ञान हुआ, उसे भी शुद्ध कहने में आया, अभेद हो गई न, जो शुद्ध चैतन्य मूर्ति पूर्ण है उसका ज्ञान होकर यह स्व के सन्मुख हो गयी, ***स्व के आश्रय हो गई, तब उसको भी अभेद कहा जाता है और उसको भी शुद्ध कहा जाता है, अभेद की अपेक्षा... वैसे पर्याय है तो व्यवहारनय का विषय है, चाहे तो केवलज्ञान हो यह भी व्यवहार नय का विषय है।*** आहाहाहा ! ऐसी फुरसत कहाँ ? अवकाश कहाँ ? व्यापार के कारण, एक धंधा हो वहाँ दूसरा धंधा चलायें कारखाना वहाँ दूसरा कारखाना, तीसरा कारखाना, इसमें फुरसत कहाँ मिलै ? आहाहा !

प्रभु ! (श्रोता :- उसमें रूपया मिलें, इसमें क्या मिले ?) धूल में नहीं मिलता रूपया वहाँ उसे, रूपया तो रूपया में रहते है, हमको मिला ऐसी ममता मिलती है उसको... पैसा मिलते है ? पैसा तो पैसा में रहते है। आत्मा में तो हमें मिला ऐसी ममता उसके पास आई, पैसा तो पैसा में रहता है। आहाहाहा ! धूल में नहीं (मिलता)।

यह पर्याय ज्ञान की हुई, यह उसमें रही - ऐसा कहने में आया। आहाहा ! प्रभु जो चैतन्यमूर्ति, चैतन्य का प्रकाश का पूर, पुञ्य पिण्ड, त्रिकाली, उसका ज्ञान हुआ वह ज्ञान की पर्याय उसमें रही क्योंकि उसके आश्रय से, उसके अवलम्बन से अथवा उससे पर्याय हुई है। आहाहा ! - ऐसा कठिन काम है।

अरेरे ! यहाँ कहाँ फुरसत, बालक हो वहाँ खेलने में जाय, युवान हो तो पत्नी के मोह में जाय, वृद्ध अवस्था हो तो जीर्ण शरीर होकर रहा, जीवन पराधीन गया। आहाहा ! इसमें पहले से काम नहीं लिया तो बाद में नहीं ले सके। शास्त्रों में - ऐसा है कि बुढ़ापे में शरीर पिघले, जीर्णता शरीर में आ जाये शरीर की इन्द्रियाँ क्षीण हों और शरीर में रोग आये, इसके पहले (काम) कर ले, बाद में नहीं होगा। आहाहाहा ! अपने अष्टपाहुड़ में है, यह श्वेताम्बर में भी है। श्वेताम्बरों की यह गाथा है जरा जाल न पिल्लई, अपने दिगम्बर में है, वृद्ध अवस्था न आ जाये, रोग शरीर में न दिखने लगे, और इन्द्रियाँ शिथिल न हो जाये तब तक काम करले आत्मा का, बाद में नहीं कर सके, चली जायेगी जिंदगी तेरी निष्फल, आहाहा ! (वैसे) निष्फल नहीं धर्म के लिये निष्फल आहाहा ! भटकने के लिये सफल... दुःख भोगने

के लिये सफल। आहाहा ! - ऐसा सत्य स्वरूप है।

`ज्ञायक भाव स्वयं शुद्ध है यह शुद्धनय का विषय है' शुद्धनय का विषय तो त्रिकाली है, परंतु उस विषय को जाना तब उसे शुद्ध कहने में आया और इस अपेक्षा उस पर्याय को भी शुद्धनय का विषय कहा जाता है। है तो विषय त्रिकाली शुद्ध, परंतु उसको विषय बनाने से जो पर्याय निर्मल प्रगट हुई, वह भी इस तरफ ढली हुई है न ? इसके उसे एक न्याय से चौदहवीं गाथा में... आत्मा कहो कि शुद्धनय कहो कि अनुभूति कहो - ऐसा कहने में आया है एक अपेक्षा से। आहाहा ! अन्यथा त्रिकाली शुद्ध को विषय कहा।

`अन्य जो पर संयोग जनित भेद है मलिन आदि, वह **सब भेद अशुद्धद्रव्यार्थिक नय का विषय है'** आहाहाहा ! परसंयोग जनित मलिन आदि पर्याय है अथवा भेद है प्रमत्त-अप्रमत्त। यह सब भेदरूप अशुद्ध द्रव्यार्थिक, यों क्यों कहा ? कि द्रव्य की पर्याय है, इस अपेक्षा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहा ***यह मलिन पर्याय प्रमत्त-अप्रमत्त भी द्रव्य की है न ? इस अपेक्षा से द्रव्य की पर्याय में उत्पन्न हुआ है न ? तो अशुद्धद्रव्यार्थिक कहा। यह अशुद्धद्रव्यार्थिक भी शुद्ध द्रव्य की दृष्टि में पर्यायार्थिक ही है, अशुद्ध क्यों कहा ? कि द्रव्य स्वयं अपनी पर्याय में अशुद्धरूप होता है इस कारण उसे अशुद्धद्रव्यार्थिक कहने में आया।*** आहाहा !

`अशुद्धद्रव्यार्थिक शुद्ध द्रव्य की दृष्टि में पर्यायार्थिक ही है' यह तो... पर्याय ही है, भेद प्रमत्त-अप्रमत्त सब। आहाहा ! **`और इसलिये व्यवहार नय ही है'** क्या कहा ? त्रिकाली वस्तु जो भगवान शुद्ध चैतन्य, वह शुद्ध नय का विषय (है), और पर्याय हुयी यह भेद परंतु जो मलिनपर्याय संयोग जनित का भेद है चौदहगुणस्थान शुभाशुभ भाव। यह तो अशुद्धद्रव्यार्थिकनय, यह द्रव्य स्वयं पर्याय में भेदरूप पर्याय हुई है इस अपेक्षा से अशुद्धद्रव्यार्थिक नय कहा, परंतु यह अशुद्धद्रव्यार्थिक यह पर्यायार्थिकि ही है और पर्यायार्थिक है वही व्यवहार है। आहाहा !

कितना याद रखें इसमें एक घण्टे में ! यह तो बापू जगत से भिन्न बात है बापू ! धर्म की जाति, तीनलोक के नाथ परमेश्वर कहते हैं यह बात सारे जगत से अलग है। आहाहा ! दुनियाँ में कहीं मेल बैठे - ऐसा नहीं। आहाहा ! क्या कहा ? कि दो भेद एक त्रिकाली द्रव्यवस्तु ज्ञायकभाव। यह शुद्धनय का ध्येय विषय और पर्याय में जो भेद है चौदहगुणस्थान शुभाशुभ आदि, वे अशुद्धद्रव्य, यह द्रव्य स्वयं अशुद्धरूप परिणमा है, पर्याय अपेक्षा हाँ, इसलिये इसे अशुद्धद्रव्यार्थिक कहा उसकी पर्याय है न - ऐसा गिनकर, यह अशुद्धद्रव्यार्थिक है, अशुद्धद्रव्य जिसका प्रयोजन वह अशुद्धद्रव्यार्थिक नय है, उसीको पर्यायार्थिक कहते हैं, यहाँ उसको व्यवहार कहते

हैं। सभी पहलू कठिन, आहाहा ! अनंतकाल का अनजान मार्ग बापू ! यह वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की भाषा में दिव्यध्वनि में प्रभु की वाणी में यह आया है, यह आचार्यों ने इसप्रकार गाथा में रचना की है। आहाहा ! उसका भावार्थ पण्डितों ने... जयचन्द्र पण्डितजी हो गये है उन्होंने यह लिखा है यह तो भावार्थ है। आहा ! क्या कहना चाहते हैं ? क्या कहा जाता है ? उसका स्पष्टीकरण भावार्थ में ले लिया है। समझ में आया ?

पर्यायार्थिक है इसलिये व्यवहार ही है। आहाहा ! इस ज्ञायकभाव में पर्याय के चौदह भेद जो गुणस्थान के, उनका भेद दिखता है यह व्यवहार नय ही है। पर्याय यही व्यवहारनय है द्रव्य वह निश्चयनय का विषय। परंतु जिसे निश्चय वस्तु का ज्ञान होता है, उसको भेद और राग का ज्ञान स्वयं से अपने कारण से होता है। आहाहाहा ! `- ऐसा आशय समझना चाहिए'... इसलिये व्यवहारनय ही है, `ही' व्यवहारनय ही, आहाहा ! यह `ही' है - ऐसा आशय समझना चाहिए, विशेष कहेंगे लो।

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)